दार्शनिक-त्रैमासिक

वर्ष ४५] जुलाई-दिसम्बर १९९९ (संयुक्तांक) [अंक ३-४

प्रधान सम्पादक

डा० रघुनाथ गिरि

बी ३७/१६५ ए गिरि नगर

बिरदोपुर, वाराणसी–२२१०१०

अखिल भारतीय दर्शन परिषद

(24)

हिरण्यगर्भ का वैदिक स्वरूप

डॉ० मुरलीमनोहर पाठक

ऋग्वेद के समस्त देवता सर्वशक्तिमान् वर्णित किये गये हैं। अनेक में एक के दर्शन करना विकसित मानवबुद्धि का स्वभाव है। ऋग्वेद के अनेक देवों के प्रति अपने हृदय के भक्तिपूर्ण उद्गारों को व्यक्त करते हुए तथा उन सबके लिए यज्ञों का आयोजन करते हुए वैदिक ऋषियों की दृष्टि उन सबके मूल अथवा आदिकर्ता की ओर जानी स्वाभाविक थी, जिसे ये संसार के अकेले जनक के रूप में स्वीकार कर सकें और इन्द्र, वरुण आदि देवों में से प्रत्येक को स्रष्टा के रूप में जानने की विषमता से मुक्त हो सकें। यही वह समय था, जब लोगों ने शतक्रतु इंद्र के अस्तित्व के प्रति भी सन्देह करना प्रारम्भ कर दिया था।[1] इन्द्र के अतिरिक्त देवताओं के प्रति भी सन्देह की भावना हमें दृष्टिगत होती है,[2] अतः ऋग्वेद के परवर्ती सूक्तों में हमें कुछ ऋषि समस्त देवताओं के मूल कारण की खोज में तत्पर दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं अनेक देवों का सम्बन्ध श्रेष्ठ देवता से भी स्थापित किया गया है। एक सूक्त[3] में सत्य को ही निखिल विश्व का आधार माना गया है। यद्यपि 'ऋत' और 'सत्य' में भेद है, तथापि यहाँ उस 'ऋत' के अर्थ में ही 'सत्य' प्रयुक्त है, जिसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। इसी पृष्ठभूमि में वैदिक ऋषि धीः शनैः विभिन्न देवताओं की आराधना से सर्वोत्तम देवता की तरफ प्रवृत्त हुए। ऋग्वेद के मन्त्रों में यह विचार भी व्यक्त किया गया कि सभी देवताओं में एक ही दिव्य शक्ति है। सबका सामर्थ्य एक ही है और एक को ही विद्वान् लोग अग्नि, यम, वरुण आदि नामों से पुकारते हैं।[4] इससे भी आगे एक अन्य भावना हमें दिखाई देती है, जिसके अनुसार एक ही व्यापक शक्ति में समस्त विश्व अधिष्ठित है।[5] एक देव को पर्येष्टि में संलग्न ऋषियों ने 'प्रजापति' अथवा हिरण्यगर्भ नामक अमूर्त देवता को ढूंढ निकाला। 'प्रजापति' का शाब्दिक अर्थ—प्रजाओं का स्वामी होता है। सृष्टिकर्ता देव के रूप में प्रजा का अर्थ सम्पूर्ण सृष्टि तथा पति का अर्थ स्रष्टा होगा। इस प्रकार 'प्रजापति' में सृष्टि तथा स्रष्टा दोनों ही अन्तर्भूत हैं। ब्रह्माण्ड में दो प्रकार के तत्त्व है—देवतत्त्व तथा भूततत्त्व। इनमें देवतत्त्व, अमरणधर्मा तथा भूत, मरणधर्मा है। प्रजापति दोनों तत्त्वों को अपने अन्दर समाहित किये हुए है। 'प्रजापति' को 'विश्वकर्मा' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। वस्तुतः प्रजापति भी एक यज्ञकर्ता ही है, जिसने जगत् की सृष्टि

के लिए स्वयं का हवन कर दिया। यह सृष्टि स्रष्टा के मन में आए विचार का ही परिणाम है।

'प्रजापति' को एक स्थान पर ऋषि होता तथा पिता के रूप में चित्रित किया गया है।[६] ये तीनों रूप क्रमशः 'मनस् तत्त्व', प्राणतत्त्व और 'भूततत्त्व' को द्योतित करते हैं। 'प्रजापति' में ये तीनों तत्त्व निहित हैं। उसे 'उपांशु' और 'तूष्णीम्' भी कहा जाता है। 'तूष्णीम्' का अर्थ मौन होता है। मौन असीम है, उसी से अखिल सृष्टि उद्भूत है। प्रजापति की सारी अव्यक्त शक्तियां 'उपांशु' या 'तूष्णीम्' में निहित हैं। शतपथ ब्राह्मण ने उपांशु को प्रजापति का रूप कहा है।[७] उसी में प्रजापति को 'आत्मन्' भी कहा गया है। आत्मा के समान ही प्रजापति मनस्तत्त्व, प्राणतत्त्व और वाक्तत्त्व से युक्त है।[८] 'वाक्' को पञ्चभूतों का प्रतीक माना जाता है। वस्तुतः सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाना ही सृष्टि है। सूक्ष्म भावों का उत्तरोत्तर विकास स्थूल रूपों में होता है। इस प्रकार सृष्टिप्रक्रिया में सर्वप्रथम 'महत्तत्त्व' या 'बुद्धि' का आविर्भाव होता है। इसके पश्चात् 'अहङ्कार' उत्पन्न होता है। यह व्यष्टिरूप है। इसके अनन्तर 'पञ्चतन्मात्रों' तथा 'पञ्चमहाभूतों' की उत्पत्ति होती है। पञ्चभूतों में सबसे सूक्ष्म और प्राथमिक 'आकाश' है। आकाश का तन्मात्र 'शब्द' है। 'शब्द' ही 'वाक्तत्त्व' है। अतः 'शब्द' या 'वाक्तत्त्व' को ही पञ्चभूतों के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसलिए पूर्वोद्धृत ब्राह्मण वचन में 'वाक्' का अर्थ भूततत्त्व करना इष्ट है। शतपथब्राह्मण में ही एक स्थल पर प्रजनन-क्रिया को प्रजापति कहा गया है।[९] अन्यत्र 'वाक्' को प्रजापति के रूप में माना गया है।[१०] प्रजापति को 'मन' के रूप में भी माना गया है।[११] वस्तुतः प्रजापति पञ्चमहाभूतों के रूप में ही इस सृष्टि में व्यक्त होता है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में कहा गया है कि प्रारम्भ में प्रजापति ने अपना अस्तित्व ग्रहण किया। इसके बाद वह वाक् के साथ संयुक्त होकर उसमें गर्भाधान किया।[१२] इस प्रकार यह सृष्टि पञ्चभूतों के सूक्ष्मतम रूप—वाक् के गर्भ में प्रजापति द्वारा आहित बीज का परिणाम है। वस्तुतः बिना पुरुष और स्त्री का संयोग हुए सृष्टि-प्रक्रिया सम्भव हो नहीं है। वैदिक अवधारणा के अनुसार पिता, माता तथा जायमान पुत्र—ये तीनों प्रजापति के ही विभिन्न रूप हैं।[१३] डॉ० अग्रवाल ने वैदिक साहित्य के अनुशीलन के आधार पर प्रजापति के अनेक नामों की परिगणना की है। उनमें कुछ प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं—हिरण्यगर्भ, एक, तूष्णीम्, परोक्ष, ऊर्ध्व, नभ्य, स्थापु, गुहा, उक्थ, अब्ज, अमृत, तत्, हृदय, केन्द्र, योनि, गर्भ, अव्यक्त[१४] इत्यादि। 'शतपथब्राह्मण' के अनुसार प्रजापति के दो रूप हैं—'अनिरुक्त' और 'निरुक्त' अथवा 'अपरमित' और 'परिमित'।[१५] 'अनिरुक्त प्रजापति' शब्दातीत है और

'निरुक्त' शब्दब्रह्मस्वरूप। विश्व प्रजापति का परिमित रूप है और उसका 'विश्वातीत रूप' अपरिमित या असीम है। जिसको मापा जा सके, उसे 'परिमित' कहते है। तथा जिसकी कोई मापा न हो अथवा जिसे मापा न जा सके उसे अपरिमित कहते है। 'यजुर्वेद' के एक मन्त्र में कहा गया है—प्रजापति गर्भ के भीतर विचरण करता है। वह उत्पन्न न होता हुआ भी विविध रूपों में उत्पन्न होता है। धीर चारों तरफ उसके उत्पत्ति-स्थान को देखते हैं। उसमें सम्पूर्ण भुवन अवस्थित है।[११] उक्त मन्त्र के अनुसार प्रजापति के दो रूप है—प्रथम रूप अजायमान अर्थात् अज या अजन्मा है। इसे ही गर्भप्रजापति के नाम से जाना जाता है। दूसरा रूप वह है, जो अव्यक्त या गर्भ से ही उत्पन्न होता है तथा जिसे बहुधा या विजायमान कहते है। इसी की संज्ञा 'पुरुष' या विश्वभुवन होती है। यह विश्वभुवन जिस अव्यक्त मूलस्रोत में अन्तर्निहित रहता है, वही योनि प्रजापति है।

प्रजापति को हृदय भी कहा गया है।[१२] हृदय से मन की प्रतिष्ठा होती है। मन के रूप में ही सबसे पहले विश्व तथा व्यक्ति दोनों का आविर्भाव होता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर विश्वकर्मा के रूप में प्रजापति की स्तुति की गयी है तथा उसे सम्बोधित करते हुए यह कहा गया है—जिसने हम सबको जन्म दिया है, उसे तुम नहीं जानते हो। यद्यपि वह हम सबके भीतर स्थित है, तथापि उसका कोई और ही रूप दिखाई देता है, उसके विषय में जितनी चर्चा है, वह सब तुषारा-च्छादित है। जो मन्त्रों का गान करनेवाले है, वे भी केवल गाते रहने से तृप्ति का अनुभव नहीं करते।[१३]

डॉ० अग्रवाल ने पुराणों के आधार पर प्रजापति की पाँच धारणाओं को स्पष्ट किया है—स्वयम्भू प्रजापति, परमेष्ठी प्रजापति, हिरण्यगर्भ प्रजापति, ब्रह्मा प्रजापति और कश्यप प्रजापति।[१४] इनमें से स्वयम्भू प्रजापति सम्पूर्ण सृष्टि का दिव्य स्रोत है। उसे क, ऊर्ध्व, अज अव्यक्त आदि नामों से जाना जाता है। यह सबका पिता है जिसमें सृष्टि का बीज निहित है। उसे अपनी सिद्धि के लिए अन्य प्रमाण नहीं चाहिए। इसीलिए मनुस्मृति में उसे 'स्वयमुद्भवो' कहा गया है।[१५] इसका तात्पर्य यही है कि स्वयं अपनी इच्छा या अपने निमित्त से और अपने ही आभ्यन्तर में लीन उपादान से उस प्रजापति ने स्वयं अपना आविर्भाव इस विश्व के रूप में किया है। परमेष्ठी प्रजापति मातृत्व है। इसे महत् तत्व भी कहा जा सकता है। इसकी सृष्टि स्वयम्भू प्रजापति ने अपने स्त्रीभाव के रूप में की। इसी के गर्भ में वह जगत् का बीज आहित करता है। इस प्रकार एक ही प्रजापति पिता और माता इन दो रूपों को धारण करता है। इनसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र सूर्य है, जिसे हिरण्यगर्भ प्रजापति कहा जाता है। अथर्ववेद में भी कहा गया है कि

अदिति-पुत्र आदित्य सूर्य ही हिरण्यगर्भ है। उसे रोहित भी कहा जाता है।[२१] यह सूर्य पहले समुद्र में छिपा था जिसे विश्वरचना के तक्षणात्मक धक्कों ने ऊपर उछाला है। समस्त सृष्टि में यह सबसे अधिक सुन्दर विचित्र और परिपूर्ण कृति है, जो सूर्य के रूप में द्युलोक में प्रत्यक्ष है। कितने ही नामों से उस एक देव का वर्णन किया जाता है। जैसे—रुद्र, महादेव, अर्यमा, वरुण, अग्नि, सूर्य, महायम आदि।[२२] इन्द्र के रूप में भी वही सूर्य द्युलोक में विद्यमान है।[२३] पाश्चात्य विद्वान् मेकडॉनेल का भी विचार यही है कि 'हिरण्यगर्भ' की कल्पना उदय होते हुए सूर्य के आधार पर कीगई है।[२४] सूर्य अग्नि का ही रूप है। अतएव अग्नि को 'अपांनपात्' भी कहा जाता है। द्यावा-पृथिवी के मध्य चन्द्रमा की स्थिति है। यह चन्द्र अन्तरिक्ष का प्रतीक है। इसे ही ब्रह्मप्रजापति कहा जाता है। पृथिवी को कश्यपप्रजापति के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार प्रजापति उक्त पाँच रूपों में अवस्थित है।

जहाँ तक 'प्रजापति' के 'हिरण्यगर्भ' रूप का प्रश्न है, वह सूर्य का ही विकसित रूप प्रतीत होता है। वेदों में 'हिरण्यगर्भ' महत्त्वपूर्ण प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। प्राण की संज्ञा 'हिरण्य' है। समस्त विश्व का जो एक बीज या रेतस् है, जिसकी शक्ति से यह विश्व आविर्भूत होता है, उसे 'भुवनस्य रेतः' कहा गया है।[२५] उसी की संज्ञा हिरण्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में उसी 'रेतस्' और 'शुक्र' को हिरण्य कहा गया है।[२६] इस दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों में हिरण्य की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं तथा सभी संगत है। आयु अमृत, देव, प्राण, तेज, ज्योति तथा सत्य ये सभी हिरण्य के ही पर्याय है। इसके अतिरिक्त ये सारे तत्त्व सृष्टि के अनुकूल है। इनके प्रतिकूल तम, असुर, अनृत, मृत्यु आदि जो तत्त्व हैं, वे सृष्टि-विरोधी हैं। जो हिरण्यगर्भ है, वही सूर्य या अग्नि है। उसे अपांनपात् या अपांगर्भ भी कहते हैं। प्रलयकाल में जो अवशिष्ट जल या समुद्र के भीतर जो प्राणतत्त्व छिपा रहता है, वही सृष्टि के समय बालक के रूप में जन्म लेता है और उसी का रूप अग्नि और सूर्य है। द्युलोक में जो सूर्य है, वह भौतिक पदार्थों का समुदाय तो है, किन्तु ऋषियों ने उसे उस महती शक्ति का प्रतीक माना है, वही विज्ञानघन शक्ति ब्रह्म है। यजुर्वेद के ऋषि ने प्रश्न किया है कि सूर्य के समान दूसरा ज्योति कौन सा है? उसी ने स्वयं उत्तर भी दिया है कि ब्रह्म सूर्य के समान दूसरा ज्योति है।[२७] इसका अर्थ यह है कि हम जिस विभ्राट् ज्योति के सूर्य के रूप में नित्य दर्शन करते है वह उस महान विज्ञानमय या चैतन्यमय शक्ति का प्रतीक है जो समस्त विश्व का मूल कारण है और जिसके ज्ञानमय तप से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है, वही ब्रह्म है। इसी दृष्टि से सूर्य को चराचर का आत्मा कहा

गया है।[२८] प्रश्नोपनिषद् में उसी उदीयमान सूर्य को प्रजाओं का प्राण कहा गया है।[२९] मनुस्मृति के अनुसार सृष्टि की इच्छा करने वाले स्वयंभू ने ध्यान कर अपने शरीर से पहले जल की सृष्टि की और बीज डाला। वह बीज सूर्य के समान प्रकाश वाला स्वर्णिम अण्डा हो गया। उसमें से सम्पूर्ण लोक के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उस अण्डे में संवत्सरपर्यन्त निवास कर भगवान् ने अपने ध्यान से स्वयं ही उस अण्डे के दो टुकड़े कर दिये। उन दोनों टुकड़ों से उन्होंने द्युलोक एवं पृथिवीलोक का निर्माण किया।[३०] इन उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि सूर्य ही विकासक्रम में प्रजापति या हिरण्यगर्भ बन गया। हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शतपथब्राह्मण में भी कहा गया है कि पहले सर्वत्र जल ही था। उन जलों ने सोचा कि कैसे प्रजनन किया जाय। इस प्रकार विचार करके उन्होंने तपस्या करना प्रारम्भ किया। तपस्या करती हुई जलराशि में सुनहला अण्डा उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होकर वह अण्डा संवत्सरपर्यन्त स्थित रहा। पुनश्च उससे सम्पूर्ण सृष्टि हुई।[३१]

'प्रजापति' या 'हिरण्यगर्भ' को ऋग्वेद के एक सूक्त में 'क' नाम से अभिहित किया गया है।[३२] तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक कथा आई है कि प्रजापति ने देवों के पीछे इन्द्र को बनाया और कहा—जाओ तुम इन देवों के अधिपति बनो। देवों ने कहा—तुम हो कौन? हम तुमसे बड़े हैं। इन्द्र प्रजापति के पास आया और बोला—देव कहते हैं तुम हो कौन? हम तुमसे बड़े हैं। प्रजापति के पास वह तेज था, जो आदित्य में है। इन्द्र ने कहा—अपना वह तेज मुझे दे दो, तो मैं देवों का अधिपति बन सकूँगा। प्रजापति ने कहा—इसे दे दूँ तो फिर मैं क्या रहूँगा? इन्द्र ने कहा—तुम 'कः' रहोगे। अतएव प्रजापति या हिरण्यगर्भ की संज्ञा "क' है।[३३] ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसी कथा का अनुवर्तन किया गया है।[३४]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रजापति अथवा हिरण्यगर्भ जगत् की सृष्टि का मूलाधार है। वह अपने विभिन्न रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि में अनुस्यूत है। वह सृष्टि के प्रथम प्रभात में उत्पन्न होकर आकाश, जल एवं जीवन्त प्राणियों का स्रष्टा है। वह शरीर तथा बल को भी प्रदान करने वाला है। उसके अनुशासन में समस्त देव तथा प्राणी रहते हैं। अमृत तथा मृत्यु उसी की छाया है। गतिशील तथा श्वास लेने वाले प्राणियों का प्रजापति अकेला राजा है। इसी ने द्युलोक तथा पृथिवी लोक को धारण कर रखा है और दृढ़ बनाया है। देवताओं में एकमात्र देव प्रजापति है। सम्पूर्ण चराचर इसी महान् देवता में

नुविद्ध है।[१५] अतः दार्शनिक दृष्टि से भी प्रजापति अथवा हिरण्यगर्भ का अत्यधिक महत्त्व है।

वरिष्ठ प्राध्यापक
संस्कृत प्राध्ययन केन्द्र
विक्रम वि० वि०, उज्जैन, म० प्र०

संदर्भ-ज्ञान

१. ऋग्वेद–२.१२ २. ऋग्वेद ५.३३–३४, ७.१८.३–४ इत्यादि
३. ऋग्वेद १०.१७ ४. ऋग्वेद १.१६४.४६
५. ऋग्वेद १०.८२.६ ६. ऋग्वेद १०.८१.१
७. स यद्दुर्गांशु तत्प्राजापत्यं रूपम्। शतपथब्राह्मण १.६.३.२७.
८. एतन्मयो वा अयमात्मा मनोमयो वाङ्मयः प्राणमयः। वही, १४.४.३. १०.
९. प्रजनन प्रजापति। शतपथब्राह्मण ५.१.३.१०.
१०. वही, ५.१.५.६ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण १.३.४.५.
११. प्रजापतिर्वा हि मनः। शतपथब्राह्मण ४.१.१.२२.
१२. प्रजापतिरिदमासीत्तस्य वाग् द्वितीयासीद् मिथुनं समभवद् सा गर्भमाधत्त।
ताण्ड्य ब्राह्मण २०.१४.२.
१३. माता पिता च प्रजापतिः। शतपथब्राह्मण ५.१.५.२६.
१४. अग्रवाल, डॉ० वासुदेवशरण—वैदिक लेक्चर्स, पृष्ठ १२५.
१५. उभयम्वेतत्प्रजापतिनिरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च। शतपथब्राह्मण ६.५.३.७.
१६. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
शुक्लयजुर्वेद ३१.१९.
१७. एष प्रजापतिर्यद् हृदयम्। शतपथब्राह्मण ४.५.४ १.
१८. ऋग्वेद १०.८२.७.
१९. अग्रवाल, डॉ० वासुदेवशरण—वैदिक लेक्चर्स, पृष्ठ १४१.
२०. मनुस्मृति १. ७.
२१. अथर्ववेद १३.११.१

२२. वही ११.४.४-४
२३. स इन्द्रो भूत्वा तेपति मम्मतो दिवम् । वही १३.३.१३
२४. मेकडॉनेल-ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ १३५
२५. ऋग्वेद १.१ ४.३६
२६. रेतो हिरण्यम् । तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.८.३.४ तथा शक्रं हिरण्यम् । वही १.२-६.२
२७. शुक्लयजुर्वेद २३.४७ तथा २३.४८
२८. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ऋग्वेद १.११५.१
२९. प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः प्रश्नोपनिषद १.८
३०. मनुस्मृति १ २.९.१२.१३
३१. आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास । ता अकामयन्त कथं नु प्रजायेमहेति ता अश्राम्यंस्तास्तपोऽतप्यन्त तासु तप्यमानासु हिरण्मयमाण्डं सम्बभूव, आतो ह तर्हि संवत्सर आस । शतपथब्राह्मण ११.१.६.१
३२. ऋग्वेद १०.१२१
३३. तैत्तिरीय ब्राह्मण २.२-१०. १-२
३४. ऐतरेय ब्राह्मण ३.२१
३५. द्रष्टव्य ऋग्वेद १२१ (X. 121)

□